इस जहाँ में हम

अल्पना मिश्र

हिन्दी ADDA

इस जहाँ में हम

कल ही दफ्तर में यह सर्कुलर घूमा है कि किन-किन कर्मचारियों को कंप्यूटर लर्निंग प्रोग्राम के लिए जाना है। कुल पाँच लोग तो कल से ही जाएँगे, फिर पाँच लोग एक हफ्ते बाद। जो छूट जाएगा, वह अगले हफ्ते बाद जाएगा। पर जाना तो पड़ेगा सबको। इसी महीने। बचा नहीं जा सकता। सबको कंप्यूटर लिटरेट होना है। इस जमाने में कलम घिसते रहने से काम नहीं चलेगा। मेरा नाम कल से ही जानेवालों में है। वहाँ तमाम बैंकों की शाखाओं से भी लोग आएँगे। पच्चीस-तीस तो हो ही जाएँगे। एक हफ्ते

का कोर्स है और एक हफ्ते बाद वाले बैच में मैं नहीं जा सकती। तब तक बच्चों के स्कूल टेस्ट शुरू हो जाएँगे। एक हफ्ता भी कैसे चलेगा? घर से काश, कोई आ जाता! कौन आ जाता? मेरी माँ और कौन? माँ से अब नहीं होता।

बड़ी बहनों की मदद कर-कर के मेरे वक्त तक ऐसे पहुँची हैं कि देह और मन अलग अलग हो गए हैं। मन जो चाहता है, देह करने को तैयार नहीं होती। देह, जहाँ पड़े रहने में सुखी है, मन उसे मान लेने को तैयार नहीं। भला मैं कैसे जाऊँ इस ट्रेनिंग के लिए? नहीं, मैं नहीं जा पाऊँगी। सब लोग ट्रेनिंग कर लेंगे। कंप्यूटर लिटरेट कहलाएँगे। मैं नहीं कर पाऊँगी। ऐसे ही रह जाऊँगी। फिर किसी ऐसी जगह मेरा ट्रांसफर कर दिया जाएगा, जहाँ अब तक कंप्यूटर नहीं पहुँचा है। जैसे कि गाँव-देहात में। फिर मेरे बच्चों की पढ़ाई पर बन आएगी। फिर मेरे बच्चों के भविष्य और मेरी नौकरी में मुठभेड़ होगी। फिर मेरे सामने नौकरी छोड़ देने का विकल्प प्रकट होगा। फिर कहने वाले कहेंगे - औरतों के वश की नहीं नौकरी, करने चली आती हैं। फिर मेरे पति की तनख्वाह बच्चों की बड़ी पढ़ाई के लिए नाकाफी हो जाएगी। मुझे फिर से नौकरी खोजनी पड़ेगी। मिलेगी क्या फिर-फिर से नौकरी? जब मन चाहे तब नौकरी? जब बच्चे बड़े हो जाएँ तब नौकरी...?

नौकरी में मैं कहाँ हूँ**?** मेरे लिए नहीं है नौकरी। मेरी नौकरी दूसरों के हिसाब से होनी है। मेरे हिसाब से क्या होना है**...?**

एक-सुबह आठ बजे निकलना पड़ेगा। जगह दूर है। लौटते हुए भी ऐसा ही कुछ समय हो जाएगा। कहने वाले कह रहे हैं कि नौ से पाँच का दफ्तर तो है ही। एक घंटा पहले और एक घंटा बाद और सही। यह कहने वालों की बात है। औरतों की नहीं। औरतें कुछ कहेंगी तो कहने वाले कहेंगे कि 'देखा, ये लोग नौकरी तो करना नहीं चाहती हैं, चाहती हैं कि बस पैसे मिलते रहें। बैठे-ठाले साज-शृंगार को पैसे आते रहें, हूँ।' अब इनके मुँह कौन लगे कि कामकाजी औरतों के पास पैसा हो तो साज-शृंगार के लिए वक्त नहीं होता और जो वक्त निकालने की कोशिश करें तो दूसरी तमाम जरूरतें पहले खड़ी हो जाती हैं। हाँ, फिर भी रोज बाहर निकलना है तो ढंग के कपड़े-लत्ते चाहिए ही।

अब कहने वाले चाहे तो इसे साज-शृंगार कह लें, चाहे तो नाज-नखरे। चाहे उन औरतों के प्रति दया से भर उठें, जो दफ्तर आते ही घर की परेशानियाँ गिनाने लगती हैं या यह बता डालती हैं कि आते-आते इतनी हड़बड़ी रही कि न अपना नाश्ता हो पाया, न अपनी टिफिन रख पायी। आते-आते रोटी के जो दो निवाले तोड़े थे, एक घर पर ही छूट गया, एक पेट में घूम रहा है। उस दूसरे निवाले की याद दिलाता हुआ। या कि कोई यह

न बताए कि क्यों कर पाउडर ज्यादा पुत गया आज। या कि ऊपर-ऊपर बालों में कंघी फिरा कर चले आए थे, अपने केबिन में पहुँचते ही जरा-सा वक्त जो मिला, बाल खोल कर कंघी करने लगे और करुणानिधानों की दया के बजाय उपहास के पात्र बन गए। क्या ये लोग नहीं करते अपने को ठीक-ठाक? वर्मा जी तो स्कूटर से उतरते ही हेलमेट उतारा नहीं कि रोड साइड पर ही बाल बनाने लगते हैं, फिर मूँछों को ठीक करते हैं, फिर आँखों का गंदा साफ करते हैं, दो बार आँख खोल-बंद करके देखते हैं कि कीचड़-साफ आँखों से सब दुरुस्त तो दिख रहा है। फिर शर्ट झाड़ते हैं मानो कुछ चिपका हो, तब कहीं पूरे आत्मविश्वास से दफ्तर में घुसते हैं। यही सब कोई महिला स्कूटर से उतरकर करे तो...? यही तो मैं वर्मा जी से पूछना चाहती हूँ।

सर्कुलर मेरे सामने आ गया है और मैंने अपने नाम के सामने हस्ताक्षर करके 'हाँ' लिख दिया है।

तय लर्निंग सेंटर बहुत दूर है। पाँचों लोगों ने एक साथ निकलना तय किया है। पाँचों लोगों के घर पाँच दिशाओं में है। नौटियाल जी के पास मारुति कार है। हालाँकि उनका घर कोई सेंटर में नहीं है, पर ऐसी जगह है कि पहुँचना आसान है। सीधा-सा रास्ता। चार पुरुषों में अकेली मैं ही महिला हूँ। दफ्तर में दो और भी महिलाएँ हैं मेरे अलावा। कीर्ति दीदी और सुमेधा। कीर्ति दीदी मुझसे बहुत सीनियर हैं। सभी की दीदी ही हैं। नए आए दसवाल साहब जरूर उन्हें मैडम कहते हैं। किसी को कोई आपत्ति नहीं है। कीर्ति दीदी हफ्ते भर बाद जाएँगी। उनके बेटी-दामाद आए हुए हैं। सुमेधा अक्सर ही बीमार रहती हैं। है मुझसे छोटी, पर जाने कौन रोग उसे भीतर-ही-भीतर कमजोर किए रहता है। उसका भी आज जाने में नाम था। उसने तुरंत छुट्टी ले ली। उसी की जगह मिस्टर सती तुरंत चल पड़े हैं।

मिस्टर सती तुरंत चल पड़ सकते हैं। सुमेधा तुरंत नहीं चल पड़ सकती।

सबके कहने से पहले ही नौटियाल जी ने कहा था कि 'उन्हें तो जाना ही है वहाँ तक, फिर चाहे गाड़ी में अकेले वे बैठे रहें, चाहे चार लोग और। पेट्रोल तो उतना ही लगेगा। फिर हफ्ते भर की सब बात है।' उनके इस तर्क से सब खुश हो गए। इसी तर्क पर न्यौछावर होकर वर्मा जी ने तुरंत सबको चाय पिलवाई।

आठ बजे घर से निकलो तो सवा आठ-आठ बीस तक नौटियाल जी के यहाँ पहुँच जाओ। फिर वहाँ से पंद्रह किलोमीटर दूर, बीच में रायपुर गाँव की टूटी-फूटी सड़क पार करते अपने गंतव्य तक पहुँचना है। मेरी अपनी स्कूटी पर ऐसा सफर तय तो किया जा सकता था, पर सब कह रहे हैं कि 'बगड़वाल मैडम, हमारे साथ ही चलिए।' फिर ये

लोग कलीग हैं हमारे। सुख-दुख के मित्र-बंधु यही हैं। आखिर इनके साथ चलने में कैसा संकोच। पर संकोच तो है भई। मन में न जाने कैसा-कैसा डर-सा है...।

मुझे कार में आगे की सीट पर सादर बैठाया गया है। हालाँकि मैं थोड़ा घबरा रही थी, पर आगे की सीट पर अकेले सादर बैठा दिए जाने से अब पहले से बेहतर लग रहा है। ड्राइवर की सीट पर स्वयं नौटियाल जी बैठे हैं। पीछे तीनों कलीग हैं। तीनों ही मुझसे सीनियर। अगर इनमें से कोई आकर धप्प से आगे बैठ जाता तो मुझे पीछे ही बैठना पड़ता। जैसा कि एक मिनट को मुझे लगा भी था। जैसे ही नौटियाल जी ने गाड़ी निकाली, वर्मा जी दौड़कर आगे बैठ गए। मैं कहने को थी कि वर्मा जी कृपया पीछे बैठने का कष्ट आज उठाएँ, पर मुझसे पहले ही बाकी दोनों तड़प उठे - 'वर्मा जी, आपके लिए यहाँ हम इंतजार कर रहे हैं।'

पर वर्मा जी सबसे सीनियर। सुनकर अनसुना कर गए। तब नौटियाल जी को आगे बढ़ना पड़ा। वे गाड़ी से उतर गए।

'ऐसा है कि आज बैठने की सबकी जगह तय कर दी जाए तो रोज परेशानी नहीं होगी।'

ऐसा कहकर वे सबकी जगह बताने लगे। जिसमें वर्मा जी की जगह पीछे ही आनी थी।

'मैडम चूँकि हमारे साथ जा रही हैं, इसलिए हमारा कर्तव्य है कि उन्हें आदर के साथ ले चलें।'

इतना कहकर पूरी गंभीरता से नौटियाल जी ने वर्मा जी को पीछे बैठा दिया। वर्मा जी पीछे तो बैठ गए, पर भुनभुनाए। उनकी भुनभुनाहट सबने सुनी और सबने अनसुनी कर दी। मैंने भी दिखाया कि मैंने अनसुना कर दिया। अगर न दिखाऊँ तो मिस्टर सती सहानुभूति से पूरे दिन के लिए चिपक जाएँगे। लगेगा कि आज पूरे दिन में वे चाहे जैसे भी इस भुनभुनाहट से उपजे मेरे दिल के दर्द को धो कर ही रहेंगे। उनकी जिस भुनभुनाहट को किसी ने नहीं सुना था या सुन कर जताया था कि नहीं सुना है, उस भुनभुनाहट के स्पष्ट शब्द थे -

'नौकरी करेंगी साथ में, जाएँगी साथ में, पैसा लेंगी बराबर का और साथ बैठने में सती-सावित्री बनने लगेंगी।' या फिर 'नौकरी क्यों कर रही हैं? इतने नखरे हैं तो घर बैठें।'

वैसे मिस्टर सती भी पीठ पीछे यही कहते हैं कि महिलाओं का नौकरी करना मुसीबत है। इतना खयाल रखना पड़ता है। इनके सामने बात तक खुलकर नहीं कर सकते।

पहले एक थी तो पता नहीं चलता था, अब तीन हैं तो लगता है पूरे दफ्तर पर छाई हुई हैं।

ऐसा नहीं है कि बाकी कुछ नहीं कहते। हमारे होने से ही सब असहज होते हैं। जैसे कि कितना भी कहो कि जो बात कर रहे थे, करते रहें, पर नहीं, हमें देखते ही उनकी बातें रुक जाती हैं। हम कहाँ उनकी शिकायत कर देंगे कि ये ऐसी बातें करते हैं कि हमारे शिकायत करने से इन्हें फाँसी लग जाएगी?

'मैडम का तो खयाल रख कर बोलो।' मुझे पिछली सीट से मिस्टर सती की आवाज सुनाई दी।

'अरे नहीं, नहीं, आप लोग बातें करें।' अनायास ही मैंने कहा।

'मैडम, आप नहीं समझतीं, ये साला बातें करते-करते नानवेज बातों पर उतर आता है, इसलिए मैंने पहले ही चेता दिया।'

'ओह!' मैं शर्मिंदा हुई। अपनी उपस्थिति के कारण। ऐसी उपस्थिति, जिससे वे लोग अपनी बातें नहीं कर पा रहे थे। सहज सामान्य बातें क्यों नहीं कर सकते ये लोग? ऐसी बातें, जिसमें मेरी उपस्थिति से बाधा न आए। ऐसी बातें, जिसमें मैं भी शामिल हो सकूँ। या कि सिर्फ मुझे यह जताने के लिए कहा है सती जी ने कि मैं किस कदर अनावश्यक बोझ हूँ उन सब पर।

न जाने कौन-सी बात इस बीच उनमें जोर-जोर से चल पड़ी थी और मैं पता नहीं उसमें से कब खिसक कर पुरानी-धुरानी बातें सोचने लगी थी।

इस पहले दिन तो मैं जैसे-तैसे झोंके में निकल आई थी। पड़ोसी को खूब-खूब सहेज दिया था कि बच्चों के स्कूल से आने के समय जरा ध्यान रखें। चावल दाल बना कर रख दिया था। कामवाली को बहुत कहा था कि शाम के बरतन जरूर माँज जाए। बच्चों के स्कूल बैग में रात को ही घर की एक चाभी रख दी थी। जब तक बच्चे स्कूल से घर पँहुचेंगे, मैं फोन कर लूँगी। आज कल फोन हर ऑफिस में है।

कल ऑफिस से घर पहुँचने पर तमाम आवश्यक कामों में से यह भी किया था कि पास की एस.टी.डी. दुकान से मिस्टर बगड़वाल यानी अपने पति को बड़ौदा फोन कर के सूचित किया। यही, इसी कंप्यूटर कोर्स के बारे में। घर वाले लैंड लाइन फोन में एस.टी.डी. नहीं है। खर्च बढ़ जाने के डर से मिस्टर बगड़वाल ने मना कर दिया था। उससे भी ज्यादा बात यह थी कि मुझे एस.टी.डी. की जरूरत ही क्या पड़नी थी। एक

मिस्टर बगड़वाल को ही बड़ौदा फोन करना होता था, वह भी इतना कम। महीने में एक बार या शायद वह भी नहीं। जरूरत ही नहीं थी। वही फोन करते रहते थे। इस तरह घर के बजट पर उनका ध्यान बना रहता था। दूसरे शब्दों में ध्यान को नियंत्रण कहा जा सकता था। घर खर्च नोट करने वाली डायरी का वे ही बराबर निरीक्षण करते और भर जाने पर हमेशा वे ही दूसरी ला कर रखते। उनका स्पष्ट निर्देश था कि छोटे से छोटा खर्च भी डायरी में नोट किया जाए। आलू, प्याज, टमाटर, आटा, दाल, दर्जी, रिक्शे का किराया, बच्चों की पेंसिल, रबड़... वगैरह। कभी कभी मैं इतनी थकी होती कि दिन भर के छोटे खर्च ब्यौरेवार लिखने में झुँझलाहट होती। मैं कुछ इस तरह लिखती, जैसे -

100 धनिया प्याज**,** टमाटर**,** चीनी**,** रिक्शे का किराया**,** बंटू की भूगोल फाइल आदि**...**।

इस तरह लिखते समय भी मैं जान रही होती कि इस पर मुझे डाँट पड़ जाएगी। इस खर्च डायरी में लिखे हिसाब से मेरे हिस्से की डाँट बड़ौदा में रुकी पड़ी है। बस, इसी महीने की किसी तारीख को मेरे उपर बरसने को आने वाली है। फिर भी मैं उनींदी सी हाथ की या दिमाग की मेहनत बचा कर लिखती -

100 बेसन**,** पिसा धनिया**,** पेट्रेल**,** पेंसिल आदि**...**।

यह कुछ स्पष्ट नहीं होता। इसमें पता भी नहीं चलता कि कौन सी चीज कितने की थी और कौन चीज किस मात्रा में थी? सौ में से दो चार रुपये बचे भी हो सकते थे। पर मैं बड़ौदा में रुकी पड़ी डाँट के डर से भी अक्सर ऐसा ही घसीट डालती। मुझे सचमुच माफ करें। क्योंकि मैं खुद ही दो चार रोज के बाद भूलने लग जाती कि कौन चीज कितने की, कितनी थी? मैं परेशान हूँ। हैरान हूँ। थकी हूँ। तिस पर ये नामुराद डायरी...।

मैं कुछ गलत खर्च करती हूँ**...?**

इतने के लिए अविश्वसनीय कैसे हो जाती हूँ**?**

खैर, तो इस कंप्यूटर कोर्स के बारे में सुन कर वे बच्चों के लिए चिंतित हो गए। दूर हैं। शनिवार से पहले आ भी नहीं पाएँगे। कहने लगे - ' छोड़ो ये कोर्स।' पर जब उन्हें मैंने ट्रांसफर वाली अपनी चिंता बताई तो वह उनकी भी चिंता बन गई। कहने लगे - ' ठीक है। किसी तरह कर ही डालो। हफ्ता दिन निकल ही जाएँगे।'

'आपका प्रमोशन तो ड्यू है मैम**!**'

'हाँ, देखिए।' अचानक ही अपनी चिंताओं में से निकल कर मैंने कहा।

'देखिए क्या? सबका आ रहा है तो आपका भी आएगा ही। प्रमोशन होगा तो ट्रांसफर भी होगा। तैयार रहिए मैडम।' नौटियाल जी ने कहा।

'ट्रांसफर से ही बचने के लिए तो...'

'अरे तो कौन सा देहात जाना है? अब तो आप कंप्यूटर लिटरेट हो जाएँगी। यहीं कहीं होगा। हरिद्वार, ऋषिकेश, सहारनपुर तक या ज्यादा से ज्यादा कोटद्वार तक। डेली अप डाउन कर लीजिएगा।'

'हम आपको एक तरीका बताते हैं अभी।' ये सती जी थे।

'जी।' मैंने तरीके की बात सुन कर निराश हो कर कहा। सती जी तरीका बताएँ और आप मान लें, ऐसे तरीके वे बता ही नहीं पाते। मसलन आपको अधिक दिन की छुट्टी लेने की चिंता खाए जा रही है तो सती जी से तरीका पूछिए। वे कहेंगे - 'आप तो महिला हैं, आपको काहे की चिंता? सरकार ने महिलाओं को विशेष छुट्टी दी है। एक ठो मेडिकल सर्टिफिकेट लगा दीजिए एबार्शन का। सौ रुपये में बन जाता है। जाइए, सवा महीने की छुट्टी ले के मौज करिए।'

बस, कट कर रह जाइए आप। और अगर मानें तो जाइए सर्टिफिकेट बनवा डालिए।

'प्रमोशन चाहिए तो भई ट्रांसफर तो झेलना होगा।'

यह भुनभुनाहट इस बार पूरी स्पष्टता और निरपेक्षता से बताई गई है। इस तरह कि भई, हमने आपसे थोड़े न कुछ कहा और जो सुन ली हैं तो समझ भी लीजिए। हर जगह सुविधा चाहिए इन लोगों को। प्रमोशन भी चाहिए, सुविधा भी। ये भुनभुनाहट है या... कौन मुँह लगे अब इनके? आखिर क्या हम 'जैसे भी हाल में' कंप्यूटर सीखने नहीं चल पड़े हैं और क्या कीर्ति दीदी ने इस उम्र में भी सर्कुलर पर हस्ताक्षर करके 'हाँ' नहीं लिखा है? पर कौन कहे? और क्यों कहे?

लंच टाइम में मैं दौड़ी हूँ फोन की तरफ। सिर्फ मैं दौड़ी हूँ। हैरानी है कि और कोई नहीं दौड़ा है। वर्मा जी टहलते हुए किसी से अपने मोबाइल पर बात कर रहे हैं। नौटियाल जी ने भी एक तरफ खड़े होकर अपना सेलफोन निकाला है। सती जी के पास इससे पहले मैंने मोबाइल नहीं देखा था। वे भी आज अपना सेल लिये इधर-उधर डोल रहे हैं। हमारे साथ आए चौथे सज्जन निर्मल जी भी अपने सेल से मुक्त नहीं हैं। वैसे तो वे कम

बोलते हैं, पर मोबाइल पर जाने कितनी देर तक बतियाते रहते हैं। जैसे कि मोबाइल में उनकी जान रहती हो। कहते हैं कि उनका कुछ चल रहा है। इश्क-विश्क जैसा। ठीक-ठीक मुझे नहीं मालूम। उड़ती-उड़ती सी बात मैं भी कह रही हूँ। दूसरे तमाम लोग भी मोबाइल हुए घूम रहे हैं। केवल मैं फोन का चोगा उठाए, उसे बार-बार कान पर लगाकर, रखकर, उठाकर देख रही हूँ कि आखिर मेरे ही वक्त इसे काम नहीं करना था।

'आप मेरे मोबाइल से बात कर लीजिए।' पीछे सती जी मुस्कराते हुए खड़े थे।

'यह तो नहीं चल रहा है। कह रहे हैं कि कल रात कोई केबल चुरा ले गया है।'

'अच्छा!' अब मैं क्या कहूँ? मन हो रहा है कि सती जी का फोन सचमुच लेकर बात कर लूँ।

'बच्चों से बात करना होगा।'

नौटियाल जी भी चले आए हैं। सबकी दया की पात्र हूँ मैं इस समय।

'आप एक सेलफोन क्यों नहीं ले लेतीं?' वर्मा जी ने बिना भुनभुनाए कहा है। एकदम साफ।

'बहुत दिन से सोच रही हूँ।'

'सोचने नहीं, करने की बात है मैडम। आजकल तो हजार-बारह सौ में भी हैंडसेट मिल रहे हैं। ले डालिए। औरतें निर्णय नहीं ले सकतीं। फिर रोती हैं।'

बाद के वाक्य वर्मा जी ने उसी पुराने अंदाज में कहा। कुछ निरपेक्ष और कुछ सपष्ट। मुझे सचमुच बुरा लगा है। वर्मा जी की बिन माँगी सलाह से भी ज्यादा उनके निरपेक्ष किंतु स्पष्ट वाक्य से धक्का लगा है।

'बोलो मैडम, घर का नंबर बोलो।' सती जी ने अधिकारपूर्वक कहा है।

मेरे पास केवल दो विकल्प हैं। सती जी या नौटियाल जी। वर्मा जी से कहना कितना ठीक होगा? और वे चौथे निर्मल जी, सबसे दूर अपने में खोए हुए हैं।

'वर्मा जी, अपना फोन दीजिए, जरा बच्चों से बात करना है।'

पता नहीं कैसे अचानक मैंने दोनों विकल्प ठुकरा दिए हैं। वर्मा जी ने चुपचाप फोन आगे कर दिया है।

न जाने इसी क्षण मैंने और भी क्या सोचा।

घर आकर, घर और बच्चों में कुछ देर लगी रही, फिर थोड़ी साँस लेकर उठी। बड़ी बिटिया को साथ लिया, स्कूटी निकाली और अगले कुछ ही मिनटों में एस.बी.आई., ए.टी.एम. के आगे पहुँच गई। शाम के आठ बज रहे थे।

यह एकदम मजेदार, सुंदर और अजीब बात है कि अब हमारे हाथ में एक मोबाइल फोन है। बिल्कुल अपना। बच्चे ऐसे आह्लादित हैं कि उसके बटन दबा-दबाकर सब जान-समझ लेना चाह रहे हैं। बिल्कुल अभी। बड़ी बेटी तो इतनी खुश है कि रह-रहकर मेरे गले लग जाती है।

'माँ, आप ग्रेट हैं।' उसने पूरे मन से कहा है।

मुझे अधिक समझ में नहीं आ रहा है। सिर्फ कॉल कैसे रिसीव करेंगे और घर बात करनी हो तो क्या करेंगे, इतना ही सीख पायी हूँ।

अब मेरे बच्चे जब चाहें, मुझे आवाज दे सकते हैं। मैं जब चाहूँ, उनका हाल पूछ सकती हूँ। मैं विज्ञान के इस आविष्कार पर आज न्यौछावर हूँ।

मेरे पास एक सेलफोन है। मेरा। बिल्कुल मेरा।

बच्चों को एक नंबर याद हो गया है। नौटियाल जी, सती जी, वर्मा जी से अलग। उनकी माँ का फोन नंबर।

इस सबमें हमें इतनी देर हो गई है कि पास की एस.टी.डी. पर रात के दस बजे जाकर मिस्टर बगड़वाल को उनके मोबाइल पर बताया है कि एक नंबर लिखिए। मेरा सेल नंबर। हड़बड़ी में यह समझ में नहीं आया कि अपने मोबाइल से कॉल करके उन्हें बताऊँ। उन्होंने कहा, 'क्या बेवकूफी है। इस खर्चे की क्या जरूरत थी?' फिर मैंने आज की सारी परेशानी बताई कि कैसे मैं बच्चों से बात नहीं कर सकी। वे बिना पूरी बात सुने ही तुनक उठे, 'कोई दिक्कत होती तो बच्चे नौटियाल जी, वर्मा जी, सती जी, में से किसी को फोन करते ही। तुम्हें इन चक्करों में पड़ने की क्या जरूरत थी?' मैं अपने उत्साह में फिर भी उन्हें समझाती रही। आखिरकार उन्होंने कहा, 'अच्छा, खरीद ही लिया है तो इधर-उधर नंबर मत बाँटना। बड़ी पर्सनल चीज होती है मोबाइल। कम

फोन करना।' मैंने उनकी ये वाली बात मान ली। किसी को भला नंबर देने की जरूरत ही क्या है? वैसे भी सोशल दायरे के नाम पर ले-दे के यही एक ऑफिस रह जाता है मेरे पास।

सुबह फिर से नौटियाल जी के घर अपनी स्कूटी खड़ी करके उनकी गाड़ी में सब चले। बैठने की व्यवस्था पहले दिन जैसी ही। सब लोग चुप थे कि अचानक एक धुन बज उठी। मैं घबरा गई। यह तो मेरे मोबाइल से आई थी। इतनी जल्दी मेरा मोबाइल पकड़ा जाएगा, मैंने नहीं सोचा था।

'किसका बजा?' सती जी पीछे से चिल्लाए। एक मिनट बाद फिर वही धुन बजी। अब मैं नहीं बच सकती।

'मेरा है?' मैंने कहा और पर्स में से मोबाइल निकाल लिया।

'आपका मैसेज आया है।'

इतनी जल्दी कौन मैसेज भेज देगा?

यह तो जिस कंपनी का कनेक्शन लिया है, उसका मैसेज था। वेलकम मैसेज। सती जी जोर से हँसे।

'जरा एक रिंग मारिए। माने ब्लैंक कॉल। हमारे पर आपका नंबर आ जाएगा।' नौटियाल जी ने खुशी से लगभग चहकते हुए कहा।

'बधाई मैडम।' निर्मल जी बोले।

'बधाई तो वर्मा जी को दीजिए। कोंचते नहीं तो कल यह न खरीदा जाता।' मैंने कहा।

'धन्यवाद।' वर्मा जी ने साफ-साफ कहा।

मैं रिंग मारने में संकोच कर रही हूँ। पर इन्हें नंबर देने में क्या हर्ज? ये ही तो हारे-गाढ़े के मीत हैं। चाहे ये न मानें, तब भी हैं। आखिर और कौन होगा हमारे मित्रों-परिचितों में? यही तो हैं। और जैसे नौटियाल जी ने कहा था, मैंने वैसे उन्हें रिंग किया, फिर सती जी को भी किया।

'हमें सती से मिल जाएगा।' वर्मा जी ने कहा।

'जरा अपना मोबाइलवा दिखाइए।' निर्मल जी ने चुपचाप कहा। वे पूरब के हैं और खुश होने पर भाषा में अपना नितांत देशी लहजा इस्तेमाल करते हैं।

मैंने मोबाइल पीछे कर दिया।

'ये किया न साहस का काम मैडम ने।'

सती जी ने मोबाइल निर्मल जी से झपट लिया।

'इसमें क्या साहस? कब से तो सोच रही थी।' मैंने उनकी बात काट दी। वे थोड़ा खिसियाए। उन्हें मेरे ऐसे जवाब की उम्मीद नहीं थी।

'अच्छा है।' कहकर पीछे से होता हुआ मोबाइल वापस मेरे पास पहुँच गया। तभी मेरा मोबाइल फिर बजा। वर्मा जी ने हल्के से कहा, 'उठाइएगा नहीं। मैंने अपना नंबर पहुँचाया है।'

'चलिए, अब हम आपको प्रमोशन की बधाई नए सेल पर देंगे।'

'बैंक में मैनेजर साहब को भी दे दीजिएगा नंबर। जैसे सूचना आएगी, तुरंत कॉल कर देंगे।'

'अरे, मैडम क्या देने जाएँगी, हममें से कोई दे देगा।'

'नहीं, मैं खुद ही बता दूँगी।' मैं कुछ तल्ख हो गई। ऐसा भी क्या मोबाइल-मोबाइल होना। पर मुझे उन सबका मोबाइल-मोबाइल होना अच्छा लग रहा है।

इस तरह मोबाइल के इर्द-गिर्द बतियाते हुए हम कब लर्निंग सेंटर पहुँच गए, पता ही न चला। इससे पहले तक इन लोगों की मोबाइल की बातों पर मैंने कभी इतना ध्यान नहीं दिया था। कीर्ति दीदी मोबाइल से डरती थीं। अपने को पुराने जमाने का कहकर मोबाइल की बात टाल जाती थीं और सुमेधा के पास एक मोबाइल था, जो हमेशा घर पर रहता था। शायद लैंडलाइन फोन की जगह मोबाइल ही था। या शायद मोबाइल पति का था और सुबह-शाम सुमेधा उस पर वैकल्पिक रूप से मिल सकती थी। इसे ही वह अपना कहकर बातों-बातों में मोबाइल का जिक्र कर लेती थी। खैर, उसके पास था तो सही। घरवाला ही सही। रोज पॉकेट में न सही, पर्स में न सही, घर पर सही। उसे वह छूना, चलाना तो जानती थी। जरूरत पड़े तो किसी दिन ला भी सकती थी। मुझसे कुछ बेहतर मानी जाएगी इस मामले में वह।

लर्निंग तो सचमुच आज से शुरू हुई है मेरी। आज मन लग रहा है। आज कंप्यूटर समझ में आ रहा है। सब एक-दूसरे को सिखा भी रहे हैं, सीख भी रहे हैं। बड़ा कैजुअल-सा चल रहा है। सीखना-सिखाना। दोस्त हैं सब। मास्टर कोई नहीं। सिखाने वाले कोई तीसमारखाँ नहीं है। उन्हें भी कितना आता है? और फिर हमारी जरूरत कंप्यूटर ऑपरेट कर लेने भर की है। इतना मुश्किल नहीं, जितना कि सोचा था...।

'सरकारी व्यवस्था है भई।' किसी ने कहा है।

जाने कहाँ से बच्चों का हाल जान लेने के उत्साह और चिंता के बीच एक जीवन तरंग चली आई है। कुछ अच्छा और महत्वपूर्ण सा लग रहा है। लग रहा है कुछ पा लिया है। या कि किसी अच्छे अहसास से भर गई हूँ। कुछ समर्थ-समर्थ जैसा महसूस कर रही हूँ। कुछ गर्व-गर्व जैसा। कुछ भाव-भाव जैसा। कुछ अपने बच्चों जैसा चंचल-सा, कुछ घर-घर जैसा। कुछ सबकी निकटता जैसा। कुछ अपने होने जैसा...।

चलो, इस लर्निंग प्रोग्राम का आखिरी दिन आज खत्म हुआ। घर पहुँची हूँ तो देख रही हूँ कि मिस्टर बगड़वाल भी बड़ौदा से आ गए हैं।

'कब पहुँचे?' मैंने पूछा और किचन की तरफ लपकी। दो घंटे पहले आए होंगे। मन-ही-मन अंदाज लगाया मैंने। मोबाइल पर बता तो सकते थे। खैर, सरप्राइज देना चाहते होंगे। उन्होंने मेरी बात का जवाब देने की बजाय मेरा सेलफोन माँगा। मैंने हाथ पोंछकर पर्स से सेलफोन निकाल कर दिया। उन्होंने जिस जिज्ञासा के साथ लिया, मुझे अच्छा लगा। पर भीतर ही भीतर थोड़ा डर भी रही हूँ कि कहीं डाँटे न कि कैसा फोन लिया? घटिया, बेकार।

वे फोन को उलट-पलटकर, रिंग टोन बजाकर, देखकर, फोन बुक चेक करने लगे। फिर वहीं से अजीब सख्त आवाज में बोले, 'ये फोन बुक में इतने नंबर किसके-किसके भर लिया है?'

मैं किचेन में थी। वहीं से बोली, 'ऑफिसवालों के हैं।'

'हूँ।' उन्होंने और भी सख्त होकर कहा। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। यह भी क्या आपत्ति करने वाली बात है? फोन है तो कुछ एक नंबर रहना भी ठीक ही है।

'अपनी अकल लगाए बिना नहीं रह सकती। मना किया था कि इधर-उधर नंबर मत बाँटना। पर तुम्हें फैशन सूझ रहा है। फँसोगी एक दिन।'

'इसमें क्या फँसना? सब ऑफिस के लोग तो हैं।' यह मैंने नहीं कहा।

क्या कहूँ? फिर अपनी अक्ल लगानी ही होगी।

सेलफोन उन्होंने अपनी गोद में रख लिया है। चाय पीने के लिए मुझे दुबारा कहना पड़ा है।

'इतनी टेंशन है, ऊपर से...' उन्होंने अपने भीतर उबलते वाक्यों को दबा लिया होगा। 'ऊपर से...' के आगे मैं हो सकती थी। मेरे साथ इस नए फोन का टेंशन हो सकता था। मेरा इतनी दूर से आकर जल्दी से चाय पीने का जो मन था, वह मर गया। मैंने चाय मेज के कोने की तरफ रखकर, घर, जो दिन भर का बिखरा था, उसे सहेजना शुरू कर दिया। बच्चों की यूनीफार्म खाट पर से उठाई, उन्हें सूँघा कि कितनी गंदी है, धोना तो नहीं पड़ेगा। फिर तहा कर रख दिया। मोजे उठाकर जूतों में लगाकर रख दिया। मोजे गंदे हो गए थे, सड़ी हुई सी गंध उसमें से निकल रही थी, फिर भी मैंने रख दिया। इसी के साथ यह खयाल जरूर आया कि 'अब वाशिंग मशीन ले ही लेनी चाहिए।' इस खयाल को फिलहाल के लिए स्थगित करके टिफिन निकालने के लिए खाट के नीचे पड़े बच्चों के स्कूल बैग उठाया है - 'तुम लोगों ने अपनी टिफिन नहीं दिया है?'

बच्चों ने हमेशा की तरह मेरी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया है। मैंने भी हमेशा की तरह उनके स्कूल बैग में से टिफिन निकाला है। इतने में अचानक एक धुन बजने लगी। मैं बुरी तरह हड़बड़ाई। मोबाइल उनकी गोद में था। मैं उनकी तरफ बढ़ी तो उन्होंने हाथ के इशारे से मुझे रोक दिया। खुद फोन उठाया - 'हलो, मैं ए.पी. बगड़वाल बोल रहा हूँ... हाँ... हाँ, हाँ, क्यों नहीं।' इतना कहकर उन्होंने मोबाइल अपने पास की मेज पर रख दिया। बल्कि उन्होंने मोबाइल अपने पास की मेज पर इस तरह रखा, जैसे मुझे चैलेंज कर रहे हों कि उठाओ! उठाओ मेरे सामने!

मैंने उठाया।

वे खड़े रहे कुछ देर। मुझे लगा कि मैं ठीक से 'हाँ' तक नहीं बोल पा रही हूँ। फिर उन्होंने जोर-से मेज पर कुछ रखा। शायद अखबार या शायद अपना हाथ। या शायद अखबार और हाथ दोनों ही। फिर बुदबुदाए - 'साला रिंग टोन है कि लगता है कान में कोई लाल मिर्च डाल रहा हो।'

वे खड़े रहे। फोन मैंने रख दिया।

'कौन था?' उन्होंने नहीं पूछा।

'नौटियाल जी का था।' मैंने ही कहा।

'किसलिए कर रहे थे?' यह भी उन्होंने नहीं पूछा।

'बैंक में प्रमोशन, ट्रांसफर वगैरह की लिस्ट आनी थी, वही बता रहे थे।' यह भी मैंने अपने आप से कहा।

वे मुड़ गए। बिना कुछ कहे। बच्चे कमरे से बाहर बरामदे में थे, वे उन्हें बुलाकर पढ़ने के लिए कहने लगे। फिर मैं भी अपने काम में लग गई। फोन वहीं मेज पर छूट गया।

वे बच्चों की कॉपी-किताब देख रहे थे। वे बच्चों से पूछ रहे थे। वे बच्चों को डाँट रहे थे। डाँटते-डाँटते अचानक वे बच्चों से कहने लगे, जाहिर है कि तेज आवाज में कहने लगे, मुझे सुनाते हुए - 'मम्मी ने आज मोबाइल लिया है, कल कार ले लेंगी, फिर तो स्टैंडर्ड इतना हाई हो जाएगा कि ये घर भी छोटा लगने लगेगा।'

मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मन हुआ कि कहूँ कि ये क्या कह रहे हैं, बच्चों के सामने? पर मेरे सामने पहुँचने पर वे हँसने लगे। अजीब-सी हँसी। मुझे अपने स्कूटी खरीदने की जरूरत के दिन याद आ गए। तब भी ऐसे ही बीता था। धीरे-धीरे नार्मल हुए थे। अचानक का परिवर्तन बर्दाश्त करना मुश्किल होता होगा। पर परिवर्तन तो होंगे ही। जरूरतें ही ऐसी बदलती जाएँगी। यही सोचकर मैंने उन्हें नहीं छेड़ा।

मोबाइल फिर बज उठा है। नौटियाल जी ही होंगे। लिस्ट देखकर बताने को कहा था। मैं सब भूल-भाल कर फोन की तरफ दौड़ी। जिस तरह झपटकर मैंने मोबाइल उठाया, कोई सोच भी नहीं सकता कि अभी कुछ देर पहले के फोन को उठाने में मैं कैसा पसीना-पसीना हुई जा रही थी! नौटियाल जी ही थे। सबके प्रमोशन-ट्रांसफर के बारे में बताने लगे। कहाँ कौन जा रहा है? क्या-क्या फेर-बदल हुई है? कौन लोग इस बार भी टस से मस नहीं हुए हैं... सती जी ट्रांसफर रुकवाने के लिए कुछ उपाय बता रहे हैं... वर्मा जी जाना नहीं चाहते...।

'किसी यार का होगा।'

मिस्टर बगड़वाल ने कैसी अजीब घिनौनी आवाज में कहा है। मैंने सुना है। साफ। हालाँकि मैं फोन पर नौटियाल जी से बात कर रही हूँ।

वे तेजी से बाहर निकल गए हैं। रात के इस वक्त। नहीं पूछा है उन्होंने - 'कौन, किसका, क्यों?'

नहीं बताया है मैंने - 'नौटियाल जी का, प्रमोशन और ट्रांसफर कइयों का, प्रमोशन और ट्रांसफर मेरा भी... जगह ठीक है। मुझे जाना होगा।'